आधुनिक परिदृश्य में उच्च शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँः दशा व दिशा

*छोटे लाल बलाई

शोध प्रविधि

इस शोध में द्वितीयक स्रोत के रूप में पुस्तकों, समाचार पत्रों तथा उच्च शिक्षा से संबंधित संदर्भ सामग्री को आधार बनाया गया है। ऐतिहासिक एवं उच्च शिक्षा से जुड़ी हुई सामग्री को लेकर अपने मत को एक विचार के रूप में रखा गया है। लिखित सामग्री को आधार बनाकर सापेक्षवादी ज्ञान मीमांसा पद्धति का प्रयोग असहभागी अवलोकन के तहत कर शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं।

मुख्य शब्द --उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालय, उपाधियां, कुलपति, सेमेस्टर, विद्यार्थी

प्रस्तावना:- ब्रिटिश मॉडल पर लॉर्ड मैकाले द्वारा भारत को शिक्षा से परिचित करवानें के बाद उच्च शिक्षा बहस और रुचि का विषय रहा है। आज भारतीय परिदृश्य उच्च तकनीक और सूचना विस्फोट से समृद्ध होता जा रहा है। पलक झपकते ही हमें सूचना मिलती है कि भारत का सेंसेक्स तेजी से बढ़ रहा है, आर्थिक विकास की दर 8 प्रतिशत रही। भारत व विदेशों में लगातार बढ़ते भारतीय अरबपतियों की संख्या और इनके द्वारा विदेशी कम्पनियों का अधिग्रहण, मतदान व महिला साक्षरता का बढ़ता हुई प्रतिशत तथा मंगल और अंतरिक्ष की ओर बढ़ते भारतीय कदम, कितना कुछ है देश के आर्थिक विकास पर प्रसन्न होने के लिए। लेकिन ऐसे परिदृश्य में जब हम उच्च शिक्षा की बात करते हैं तो पता चलता है कि यह तो "अंगद" के पैर की तरह जम गई है ठोस, भारी और अचल। जिसका वर्तमान समसामयिक जीवन के बदलते हए सन्दर्भों से बहुत कम सरोकार है।

उच्च शिक्षा :- उद्भव व विकास

आधुनिक विश्वविद्यालयों की स्थापना औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश काल में हुई पर इससे पहले भी प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशीला, उड्यन्तपुर विश्वविद्यालय थे।[1]ब्रिटिश काल में 1857 में कलकता और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। तीसरी दुनिया के नव स्वतंत्र देशों की राष्ट्रीय नीतियों का मुख्य लक्ष्य भूख, बीमारी और अज्ञानता को मिटाना था। इसलिए हमनें अपनी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत उच्च शिक्षा की प्राथमिकता पर निरन्तर बल दिया अनेक विश्वविद्यालय व महाविद्यालय स्थापित किए गए। आज देश में 49 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, 367 राज्य विश्व विद्यालय, 123 डीम्ड विश्वविद्यालय व 282 निजी विश्वविद्यालय हैं। (स्त्रोत : https:// en.m.wikipedia.org) इसके अलावा राजकीय व निजी महाविद्यालयों का भी बड़े स्तर पर विस्तार हुआ है। जिसमें लाखों की संख्या में विद्यार्थी अध्ययनरत है। यदि हम इस स्थिति की स्वतंत्रता पूर्व के हालात से तुलना करें तो शिक्षण संस्थाओं में बहुत वृद्धि हुई है। वर्ष 1947 में हमारे देश में केवल 20 विश्वविद्यालय एवं 700 महाविद्यालय थे जिनमें 7 लाख विद्यार्थी थे।

ये आँकड़े चौका देने वाले नहीं है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए उच्च शिक्षा में इस श्रेणी का विस्तार स्वाभाविक

व जरूरी है। आज हम शिक्षा के तेज फैलाव पर गर्व कर सकते हैं। लेकिन जब हम दूसरे देशों पर नजर डालते हैं तो लगता है कि उन देशों ने हमसे कहीं ज्यादा तरक्की की है। हमारे यहां उच्च शिक्षा का स्वरूप सामान्यतः औपनिवेशिक रहा। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों और कुछ कृषि विश्वविद्यालयों को छोड़कर नये ढंग का ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है जिसमें शैक्षिक चिन्तन की कोई नई संकल्पना देखी जा सके। [2]भारत के कुल बजट में सुरक्षा के बाद शिक्षा पर ही व्यय किया जाता है। कुल जी.डी.पी. का 3 प्रतिशत से कुछ ज्यादा। हर पंचवर्षीय योजना में उच्च शिक्षा पर व्यय का आकार बढ़ा है। इतना व्यय होने के बाद भी इसकी गुणवत्ता में सुधार के विपरीत गिरावट आती हुई प्रतीत हो रही है।

उच्च शिक्षा के समक्ष चुनौतियां :- दशा

सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध संसाधनों के अनुपात में छात्रों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होना है। यद्यपि उच्च शिक्षा में निजी संस्थानों की संख्या बढ़ी है परन्तु इससे शिक्षा की गुणवता में कमी आई। ऐसे संस्थानों पर भी सरकार का नियंत्रण बहुत कम रहा। शैक्षणिक व्यवस्था और प्रबन्धन परम्परावादी है जो अभी तक प्रारम्भ से चले आ रहे नियमों और ढाँचे के अनुसार चल रही है। इसमें नवीनता की कमी है यही कारण है कि जितने तेजी से उच्च शिक्षा में परिवर्तन ग्लोबल स्तर पर हुये हैं उतने परिवर्तन भारतीय संदर्भ में उच्च शिक्षा में नहीं हुए। विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान, कषि और पशु चिकित्सा विद्यार्थियों की अपेक्षा कला, वाणिज्य और विधि के विद्यार्थियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। ऐसे विद्यार्थियों को हम किस प्रकार राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा में खपा सकेंगे। [2]

हमारे विश्वविद्यालयों की उपाधियों का भयंकर अवमूल्यन हुआ है। विश्वविद्यालय के स्नातक कई नगरों में बस कंडक्टरों के रूप में तो स्नातकोत्तर और पी.एच.डी. डिग्री धारक रेलवे गार्ड की हैसियत से काम कर रहे है। बैंकों की साधारण नौकरियों में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त एम.एस.सी. और एम.ए. तक नहीं लिये जाते। उच्च शिक्षा का सबसे दुखद पहलू यह है कि अनेक स्नातकों को नौकरी तक नहीं मिलती। शैक्षिक और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में स्नातकोत्तर छात्रों और शोधकर्ताओं के अनुपात में कोई विशेष वद्धि नहीं हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी उच्चतर शिक्षा संस्थाएँ शोध कार्यों के मामलों में उन्नत देशों की स्थिति से तुलना नहीं कर सकती। विगत वर्षों से हमने विदेशी शिक्षा प्रणाली के कार्यक्रमों और व्यवहारों को प्रयोग में लाने का यतन किया। जैसे सामान्य शिक्षा, एक ही संस्था में व्यावसायिक और शास्त्रीय शिक्षा का एकीकरण, ग्रीष्माकालीन संस्थान, 'सेमेस्टर' और 'क्रेडिट' प्रणाली, मार्गदर्शन और परामर्श, क्षेत्रीय अध्ययन, पत्राचार-पाठ्यक्रम और राष्ट्रीय सेवा। इन उत्कष्ट विचारों को जब भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रतिरोपित किया जाता है तो उनके प्रारम्भ करते समय जो धूमधाम होती है उसके समाप्त होने के शीघ्र बाद ही वे सूख जाते हैं।

कुलपति जैसा उच्च पद अपनी अधिकांश गरिमा खो चुका है। कोई भी आक्रामक विद्यार्थी-समुदाय जब चाहे किसी भी कुलपति को डरा धमकाकर अपनी अपनी मांग मनवा सकता है। उच्छृंखल राजनीतिज्ञ और विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य भी उसे समय-समय पर तंग करते हैं। साथ ही कुलपति को भावशून्य दफ्तरशाही और तुनुक मिजाज मंत्रियों को भी झेलना पड़ता है। राज्य सरकारें भी विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष नियंत्रण बनाने में लगी रहती हैं। आर्थिक अनुदान देने में ये भी कृपणता दिखाती रहती है। [4]

शिक्षक और युवाओं के राजनीति से जुड़ने के कारण उच्च शिक्षा स्तर में भी गिरावट आयी है। वस्तुतः शिक्षण संस्थानों

को राजनीति से दूर रखने की और अब उच्चतम न्यायालय का भी ध्यान गया है। इस मामले में भारत की बात की जाये तो अक्सर मार्च अप्रैल में चुनाव आ जाते हैं। इसी समय से स्कूल से लेकर कॉलेज व यूनिवर्सिटी लेवल तक को परीक्षाएं होती है। इसी साल सिर्फ यू.पी. में होने वाले लोकसभा चुनावों से 60 लाख से अधिक छात्र प्रभावित होंगे। इसमें खास तौर पर वे छात्र है जो मेडिकल और इंजीनियरिंग में दाखिला लेना चाहते है। उपाधियों को भी हर स्तर पर पदोन्नति के लिए आवश्यक बनाने से प्रतिभाओं का हनन हो रहा है। पी.एच.डी. को हर पदोन्नति के लिए आवश्यक करने से इसकी स्थिति अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की तरह होती जा रही है।

यूरोप और अमेरिका में कहीं भी इस तरह की उपाधियाँ आवश्यक नहीं होती। भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में दीक्षांत समारोह होना बंद हो गये है। जब उपाधियाँ घर भेजी जाने लगी हों तो दीक्षांत समारोह में जिस तरह का वातावरण होता है उससे युवाओं का परिचय ही नहीं हो पाता। अधिकांश विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में छात्र-छात्राओं की उपस्थिति बहुत कम होती है। उपस्थिति के नियमों को व्यवहार में अपनाया जाये तो 90% छात्र तो परिक्षा में ही नहीं बैठ सकेंगे। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में फर्जी विश्वविद्यालयों और उनकी उपाधियों की भी व्यापक स्तर पर समस्या सामने आई है। शिक्षा आयोग ने 1964 में अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया है कि युवाओं में कुंठा और अनुत्तरदायित्व का कारण छात्र-शिक्षक संबंध का ठीक न होना है। अनेक शिक्षक तो छात्रों की समस्याओं पर ध्यान तक नहीं देतें है।

विश्वविद्यालयो और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति व मानसिक स्तर को वैज्ञानिक रूप से सुनिश्चित करने की कोई सुविधा नहीं है। परीक्षाओं पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। खेलकूद की सुविधाएं तथा शैक्षणिक व सह-शैक्षणिक सुविधाएं अपर्याप्त है। [6]

शिक्षा की केवल एक ही पद्धति उपलब्ध है और वह है पुरानी व्याख्यान पद्धति। विश्वविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का रूझान शोध अथवा अकादमिक उपलब्धियों की ओर ना होकर प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अपनी पैठ बनाने में अधिक रहता है। इसलिए उच्च शिक्षा न तो जन साधारण की नयी इच्छा आकांक्षाओं की पूर्ति कर पाई है और न ही ऐसे प्रशिक्षित लोग तैयार कर सकी जो महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं से कुशलतापूर्वक और एक प्रतिबद्ध भावना के साथ निपट सके।

उच्च शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव-दिशा:-

उच्च शिक्षा की चुनौतियों के सन्दर्भ में हमें गम्भीरता से विचार करना है कि उच्च शिक्षा का आयोजन किस तरह से किया जाए ? हमें उच्च शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। इन परिवर्तनों में जन शक्ति नियोजन, शिक्षा का संतुलन, क्षेत्रीय प्रसार, उच्च शिक्षा संस्थाओं में आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराना, जन चेतना उत्पन्न करके पढ़े लिखे समाज का निर्माण करना, रोजगार अवसरों की पर्याप्तता, शिक्षकों को उचित सम्मान व मानवीय मूल्यों का विकास, नौकरी को डिग्री से मुक्त करना, प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की अभिवृत्ति व अभिप्रेरणा की जाँच करना व शैक्षणिक प्रणाली का विकेन्द्रीकरण आदि। इसके अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी करने होंगे। [7]

जैसे-

1. व्यावसायिक बनाया जाये जिससे स्नातक स्वरोजगार उत्पन्न कर सके।

2. शोध के स्तर को सुधारनें के लिए आवश्यक है कि केवल उन्हीं शोधार्थियों का पंजीकरण हो जो वास्तव में शोध करना चाहते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि उपाधियों को पदोन्नति के साथ ना जोड़ा जाए। जिससे की हमें वास्तविक शोधकर्ता व वैश्विक शोध प्राप्त हो सके।

3. विश्वविद्यालयों को राजनितिक नियंत्रण से मुक्त किया जाये ताकि सृजनशील व्यक्ति रचनात्मक रूप से कार्य कर सके।

4. विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण कम से कम हो। उपकुलपति पद की गरिमा और प्रभाव को बढ़ाया जावे जिससे की वे राजनितिक दबाव से मुक्त होकर निर्णय ले सके।

5. निजी विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों के संबंध में राज्य सरकारें कठोरता से निर्णय ले जिससे की उच्च शिक्षा की गुणवता बनी रही।

6. विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में पड़े रिक्त पदों को जल्द से जल्द भरे जाये। जिससे शोध के स्तर में सुधार हो व विद्यार्थियों को लाभ मिल सके।

7. उच्च शिक्षण संस्थाओं के शिक्षकों को वैश्विक जरूरतों के अनुसार अपडेट करने के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम डिजाइन किये जाएं।

8. विद्यार्थियों की सुविधा और गुणवत्ता के स्तर का आकलन करने के लिए राज्यों में सरकारी कॉलेजों के साथ-साथ निजी उच्च शिक्षण संस्थाओं की भी रेटिंग किये जाने का प्रावधान हो।

9. दूरस्थ शिक्षा को भी अधिक से अधिक शोधपरक बनाया जावे।

उद्देश्य:-

प्रश्न यह उठता है कि आखिर उच्च शिक्षा में सुधार क्यों ? इसका उत्तर उच्च शिक्षा के निहितार्थों के तहत दिया जा सकता है। उच्च शिक्षा ऐसे विचारों व व्यक्तियों को एक बनाती है जो भविष्य को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्तरों का पोषण करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते है। उच्च शिक्षा में सुधार के द्वारा हम ऐसे प्रशिक्षित लोगों के समूह को तैयार कर सकते हैं जो महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं से कुशलतापूर्वक और प्रतिबद्ध भावना के साथ निपट सके और भारत को वैश्विक स्तर पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पहचान दिलवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

निष्कर्ष:-

ज्यों-ज्यों हमारा समाज तकनीकी दृष्टि से अधिक जटिल बनता जाएगा, हमारी प्रशिक्षित जनशक्ति संबंधी आवश्यकताएं बढ़ती जाएगी और हमें अधिक उच्च शिक्षा संस्थाओं की आवश्यकता होगी। परन्तु हमारी असल आवश्यकता ऐसी प्रशिक्षित योग्यताओं की है जिनमें समस्याओं का समाधान करने की सशक्त क्षमताएँ हों। हमें ऐसे डिग्रीधारी समूहों की जरूरत नहीं है। जिनका शिक्षा के एक या अधिक क्षेत्रों से अस्पष्ट और अपर्याप्त परिचय भर हो। अतः हमें विद्यार्थियों को विज्ञान आधारित व तेजी से बदलते भारतीय समाज की अनुभूति से अवगत करवाना होगा तथा

उन लोगों के संबंध में कड़ा निर्णय लेना होगा जो न तो उच्च शिक्षा का लाभ उठाने के लिए न तो परिश्रम करने को तैयार हो और न ही उसके योग्य हो। हमें उच्च शिक्षा प्रबंधन के लिए एक कारगार नीति अपनानी होगी। उसके उद्देश्यों को पुनः परिभाषित करना होगा व उच्च शिक्षा प्रणाली में विश्वास जगाना होगा।

***सहायक आचार्य–इतिहास**
राजकीय महाविद्यालय
करौली (राज.)

सन्दर्भ-सूची:-

1. महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली पृ.सं. 671-672
2. दूबे, श्यामाचरण, शिक्षा, समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन पृ.सं. 38
3. K.Viyyanna Rao, Higher Education in India- Issue of concern, S.K. Book Agency, New Delhi pg.1-3
4. दूबे, श्यामाचरण, शिक्षा, समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन पृ.सं. 47-50, 62-63
5. राजस्थान पत्रिका, श्रीगंगानगर बुधवार 04. 01. 2017 , पृ.सं. 07
6. मिश्र, राजेन्द्र, तिवारी प्रहलाद, आधुनिक शिक्षा की चुनौतियाँ, विद्यार्थी प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 121-130
7. यादव, सुबह सिंह, जे.पी., एच. एस. भारतीय शिक्षा, प्रवृत्तियों व आयाम, पोईन्टर पब्लिशर्स जयपुर पृ.सं. 58